सदाई वैरागु, रखनि संत अंदर में,
साफ कियाऊं दिलि खे, लाहे दुतिया दागु,
जागी अविद्या निंड मों, सामी थिया सुजागु,
सहजे खेलनि फागु, चढ़ी मेर महल में.

साधु-संतों के लक्षण बताते हुए सामी जी कहते हैं कि सच्चे संत सदा ही अपने अंदर वैराग्य-वृत्ति धारण किये हुए होते हैं। संतों ने अपने मन से द्वैत का भाव मिटा कर मन को निर्मल कर दिया है। वे अविद्या/अज्ञान की नींद से जाग गये हैं। वे सचेत हो गये हैं और अब मेरु पर्वत पर स्थित महल में प्रियतम परमेश्वर केसाथ होली/फाग खेल रहे हैं।

लौकिक और अलौकिक विषय-भोग के प्रति अनासक्ति ही 'वैराग्य' है। इस लोक और परलोक के विषय-सुख आदि भोगने के प्रति जो अनासक्त/उदासीन होता है, उसे 'वैरागी' कहते हैं। सांसारिक बंधनों से मुक्ति पानी है तो प्रारंभ वैराग्य धारण करने से ही करना होगा। आत्म-अनात्म के विवेक द्वारा, वेदांत शास्त्र के श्रवण द्वारा अथवा सतगुरु के उपदेश द्वारा यह बात समझी जा सकती है कि यह जगत् और जीव विनाशी हैं। संसार के सभी भौतिक सुख अंततः दुखदायी हैं। जन्म-मरण के कुचक्र में फँसाने वाले हैं। अपने अंदर झाँक कर वृत्तियों को देखने से वैराग्य निर्माण हो सकता है। सच्चे संत अपने भीतर वैराग्य धारण किये हुए होते हैं। वे अपने भीतर वाली वैराग्य रूपी अग्नि से विषय-विकार रूपी सेना/फौज को जला कर भस्म कर देते हैं। जली हुई इंद्रियों को धीरज द्वारा दृढ़ता से पकड़ कर रखते हैं, संयम के फँद में फाँस कर अंतर्मुख कर डालते हैं। (इति संत ज्ञानेश्वर) बिना वैराग्य के परमेश्वर को पाना संभव नहीं है। सच्चे संतों के संबंध में संत ज्ञानेश्वर कहते हैं कि वे चंद्रमा की भाँति निष्कलंक, स्वच्छ होते हैं। मानों किसी को अपने तेज/ताप से दग्ध न करने वाले सूर्य हैं। संत भी मनुष्यों के मित्र एवं संबंधी हैं। सच्चे और वैरागी संतों के संबंध में यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि वे करुणासिंधु एवं परोपकारी होते हैं। उनके सान्निध्य से मनुष्य अपना जीवन सफल कर सकने में समर्थ बन जाता है। सामी साहब ने भी ऐसे ही संतों की विशेषता का वर्णन किया है। संत तुकाराम महाराज के शब्दों में,

काय सांगो आता संतांचे उपकार। मज निरंतर जागवती।
काय द्यावे त्यासी व्हावे उतराई। ठेविता पायी जीव थोडा ।।

■